अध्याय चतुर्थ
विभिन्न पवित्र प्रतीकों से सम्बन्धित मातृ–देवी

ज्ञान की वर्तमान अवस्था में द्वितीय शताब्दी ईस्वी से पहले मातृ–देवी प्रतिमा का अंकन नहीं मिलता है। किन्तु विचारात्मक पूर्वगामी स्वरूप की चर्चा की जा सकती है यथा 1500 ई0पू0 की हड़प्पा सभ्यता में एक प्रकार की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं जिन्हें पुरातत्ववेत्ता मातृ–देवी की मूर्तियाँ मानते हैं। धरती की पूजा से ही मातृ–पूजा की उत्पत्ति हुई है। एक मोहर में स्त्री के पेट से एक पौधा निकल्ता दिखाया गया है। एक अन्य चित्र में एक स्त्री पाल्थी मारकर बैठी हुई है, इसके दोनों ओर पुजारी हैं। स्त्री के ऊपर पीपल की पत्तियों का चित्रण है। सम्भवतः इसी से शक्ति–पूजा, मातृ–पूजा और देवी–पूजा का प्रचलन हुआ। हड़प्पा सभ्यता से ज्ञात अंकनों की मातृ–देवी जैसा कहा जा सकता है अथवा इसे मातृ–देवी का प्रागऐतिहासिक काल का पूर्ववर्ती रूप कहा जा सकता है। इसी प्रकार का एक अंकन चन्द्रकेतुगढ़ का है जो कि दूसरी शती ईसापूर्व का है। इससे पौधे के हिस्से तथा प्रजनन की स्थिति है जिससे यह भाषित होता है कि स्त्री का गर्भ धारण करना सभी प्रकार के जीवन का स्रोत है। इस सन्दर्भ में हम इनामगाँव के टूटे सर वाली स्त्री का अंकन को ले सकते हैं जिसके पैर फैले हुए हैं तथा साथ में एक बैल है तो 1200 ईव पूर्व की है। इसमें सरविहीन स्त्री तथा उसके बैल से सम्बन्ध को प्रतीकात्मकता में उर्वरा भूमि तथा उर्वर बरसात के रूप में देखा जा सकता है इसमें बैल के पुरुषत्व के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है।[1]

मातृ–देवी के स्वरूपों के शुभकारक प्रतीकों के वास्तविक संसर्ग को पहचाना जा सकता है। इस देवी के चार स्वरूपों के विस्तारण तथा उत्पत्ति के पीछे कलात्मक तरीके

देखे जा सकते हैं। ई0पू0 के प्रथम शताब्दी तक भारतीय कला में उसके लाक्षणिक रूप का शब्दकोष स्थायित्व हो चुका था जिसके तीन उत्कृष्ट लक्षण कमल तक भरा हुआ पात्र तथा भाष्य का चिन्ह श्रीवत्स इन प्रतीकों में प्रत्यक्ष या गुप्त रूप से मातृ–देवी के आकारों में समाहित है। उसके स्वरूप तथा लाक्षणिक संकेतों के द्वारा उसके प्रतिमाओं से सम्बन्धित कम स्पष्ट रूप में यक्ष और मेढक भी हैं। उस भाग में मातृ–देवी से सम्बन्धित कमल, पात्र यक्ष, श्रीवत्स तथा मेढक प्रतीकात्मक रूप कहे जा सकते हैं। ये प्रतीक मातृ–देवी की असीम जीवनदायिनी शक्ति को स्वीकार करते हैं। मातृ–देवी के ये पाँचों पूर्वगामी स्वरूप विस्तारण के समानता के जरिए बिना मूल स्रोत के कलाकार के कल्पना से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। वोच्स के शब्द का प्रयोग अर्थात् कुछ स्वरूपों का सम्पर्क जो उसके स्वरूप में भारतीय कला में एक परम्परागत अर्थ रखते हैं।[2]

कमल

देवी मातृ–देवी अपने स्वरूपों में भाग्य की अवधारणा के अर्थ को अर्न्तनिहित करती है। यह भाग्य विशेषकर पुनः उत्पादन तथा उर्वरता के गुणों से सम्बन्धित है। भारतीय कला में कमल पुनः–उत्पादन, उर्वरता तथा भाग्य का अत्यधिक श्रेष्ठ प्रतीक है। इस पुष्प की लाक्षणिकता मातृ–देवी के अध्ययन में सहायक हैं।[3]

भारतीय कला धर्म और दर्शन में कमल अधिक महत्व का प्रतीक है। यह जल के ऊपर तैरते हुए प्राण या जीवन का चिन्ह है। यह पुष्प सूर्योदय के समय अपनी पंखुड़ियाँ खोलता है। सूर्य ब्रह्मा का प्रतीक माना गया है (ब्रह्म सूर्यसमंज्योतिः)।[4] अतः कमल प्राण का वह रूप है जो भूतों में समष्टिगत प्राण या जीवन का आवाहन करता है। यह विष्णु की नाभि या केन्द्र से उद्‌गत होने वाले बलों का प्रतीक था जिनसे प्राण का संवर्धन होता है। विष्णु की नाभि के कमल पर ब्रह्मा का विकास हुआ जो सृष्टिकर्ता है (ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं

पुष्करे ससृजे)।[5] कमल के पर्ण या पुरइन बेल को सृष्टि की योनि या गर्भाधान भी कहा है (योनिर्वै पुष्करपर्णम)।[6] कमल विराट मन का प्रतीक है और व्यष्टिगत प्राण शक्ति का भी। भागवतों के अनुसार संसार को भू–पद्मकोष कहा गया है और सृष्टि का जन्म कमल से माना गया है। वे दो प्रकार की सृष्टि मानते हैं, एक पद्मजा दूसरी अण्डजा। पद्मजा सृष्टि क्षीरशायी विष्णु की नाभि से होती है अण्डजा सृष्टि हिरण्य गर्भ से होती है। वैदिक मान्यता में जो स्थान हिरण्यगर्भ का था वही भागवत दर्शन में कमल का है। वेद के अनुसार पृथ्वी पर अग्नि और द्युलोक में आदित्य के दो बड़े पुष्कर हैं। हिरण्यगर्भ की सृष्टि अग्नि पर और कमल की सृष्टि जल पर निर्भर है। मातृकुक्षि से उत्पन्न होने वाले शिशु का प्रतीक कमल था। पूर्णघट में अण्डजा और पद्यजा अर्ाित कमल और जल इन दोनों कल्पनाओं का समन्वय है। भारतीय कला में कमल का चित्रण अनेक रूपों में मौर्य युग से लेकर अन्त तक पाया जाता है। उत्पल, पुण्डरीक, कल्हार, शतपत्र, सहस्रपत्र, पुष्कर, पद्यक इत्यादि नामों से कमल का उल्लेख होता है। कमल को ''सूरजमुखी के फुल्ले'' भी कहते हैं।

कमलपद्मा अथवा कमल भारत का एक पवित्र प्रतीक है। भारतीय कला में यह जैन–धर्म, हिन्दू–धर्म व बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। कमल देवी है पद्मा श्री–लक्ष्मी उसकी प्रकृति सुन्दरता शुद्धता तथा सौभाग्य है। श्री तथा लक्ष्मी के रूप में विष्णु के दो पत्नियों का उल्लेख यजुर्वेद के श्रीसुक्त में आता है, वहाँ उन्हें पुरुष की पत्नी कहा गया है। श्री और लक्ष्मी नामक दो देवियों को मिलाकर एक ही श्री–लक्ष्मी की कल्पना की गयी। ऋग्वेद के श्रीसुक्त में इनका पृथक और एक साथ भी वर्णन किया गया है। उसके विकास में और कई मांगलिक चिन्हों का सम्मिलन हुआ–जैसे इसका एक रूप जिसमें कमल के वन में कमल पर खड़ी हुई (पद्यासना) और हाथों में कमल लिए हुए (पद्यहस्ता) श्रीदेवी पद्मिनी के रूप में दिखायी जाती थी। दूसरा रूप जिसमें पद्यिनी श्री देवी के दोनों ओर सनाल

कमलों पर बने हुए हाथी आवर्जित घटों से देवी का अभिषेक करा रहे हैं। उसे गजलक्ष्मी कहा गया। गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ शुंगकाल से ही मिलने लगती हैं। मथुरा से प्राप्त कुछ छोटी मूर्तियाँ भी उसी प्रकार की और सम्भवतः उसी समय की हैं। उनमें एक स्त्री मूर्ति हाथों में कमल लिए हुए कमल के आसन पर कमलों के बन में खड़ी है और दो हाथी अपने सूड़ों में आवर्जित घट उठाए हुए उसका अभिषेक कर रहे हैं। लक्ष्मी की यह मूर्ति अत्यन्त लोकप्रिय हुई। मथुरा से एक ऐसी मूर्ति मिली है जो भारतीय कला में अनुपम है। इसमें देवी श्रीलक्ष्मी कमलों से भरे पूर्णघट पर खड़ी है। वह अपने बायें हाथ से बुद्धाधारिणी मुद्रा में दूध की धार छोड़ती हुई दिखायी गयी है। उसके पीछे सनाल कमलों का सुन्दर चित्रण हुआ है जिसमें पत्तियाँ, नीलोत्पल की कलियाँ और रक्तोत्पल के फुल्ले दिखाए गए हैं। कमल की उठती हुई बेल पर मोर–मोरनी का जोड़ा है। देवी श्रीलक्ष्मी स्वर्ग के नन्दन वन की देवता थी श्रीलक्ष्मी देवों की ओर माया असुरों की देवी थी। देवी को तीसरे रूप में पूर्णघट से सम्बन्धित माना गया हैं चौथी रूप में हेमामालिनी वह स्वर्णमाला और रत्नों के भण्डार की अधिष्ठात्री देवी थी। इस रूप में राजाओं के रत्न भण्डार में सोने की मालाओं या हारों से सुशोभित हेमामालिनी यष्टि की जाती थी। साँची के उत्तरी तोरण के स्तम्भ पर इस प्रकार के कण्ठों और मालाओं से युक्त यष्ठि का अलंकरण है। पाँचवें रूप में श्रीलक्ष्मी गउओं और गोष्ठ की अधिष्ठात्री देवी मानी गयी जब उसके लिए करीषिणी अर्थात् गोबर में रहने वाली, यह विशेषण प्रयुक्त हुआ। उसका एक विशिष्ट रूप गोल चकियों पर पाया जाता है जिन्हें प्राचीन परिभाषा के अनुसार श्रीचक्र कहते थे। इन चकियों का तालवृक्ष के पार्श्व में जो मातृदेवी की मूर्ति है उसे श्रीदेवी ही कहना चाहिए। इन चकियों पर हाथी, मकर, मृग, गोधा, सुपर्णा, सिंह आदि पशु–पक्षियों का अंकन है जिसके आधार पर पशु–पक्षी जगत की महीमाता माना जा सकता है। यह गर्भ धारण और प्रजनन की देवी थी जिसकी

पहचान भू–देवी या पृथ्वी से की जाती थी। लौरियानन्दगढ़ से प्राप्त सोने की पन्नी पर बनी हुई पृथ्वी मूर्ति में इसी देवी की आरम्भिक रूप पाया जाता है जो हू–बहू श्रीचक्रों की मातृ–देवी का भी है।

कालान्तर में इस देवी का सम्बन्ध बच्चों से भी माना जाने लगा जैसा दन्दान उइलिक की चित्रलिखित श्रीलक्ष्मी की मूर्ति से ज्ञात होता है। गुप्त युग में श्रीलक्ष्मी का पद राष्ट्रीय देवी के रूप में मान्य हुआ जैसा गुप्तों की स्वर्ण मुद्राओं पर अंकित चित्र से ज्ञात होता है और वही मूर्ति गांगेय देव के सोने के सिक्के पर जारी रही। श्रीलक्ष्मी को समुद्र की पुत्री माना गया जो चंचला के रूप में पुरुषों की भाग्य–विडम्बना के अनुसार आती जाती हैं पद्मिनी रूप में श्रीलक्ष्मी अष्ट–निधियों की अधिष्ठात्री देवी मानी गयी–कमल (पद्म), महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील, शंख ये आठ निधियाँ हैं। इसके पद्म और महापद्म स्वर्ण रत्नों के प्रतीक थे जैसा पद्मिनी के अन्तर्गत मार्कन्डेय पुराण में कहा है।

श्रीलक्ष्मी विष्णु की पत्नी हैं। ऋग्वैदिक काल से (पुरुष सूक्त) से आज तक श्रीलक्ष्मी सुख, सम्पन्न तथा संवृद्धि देने वाली सम्पन्न गृहस्थों की देवी मानी जाती हैं। कमलों के जिस सरोवर में वह दिखायी जाती हैं वह उन दिव्य जलों का स्रोत है जिनसे विश्व का जन्म होता है और उन्हें ही आपःसमुद्रः सलिलम् कहा जाता हैं पद्म या कमल उस जीवन तत्व के सूचक हैं जो सृष्टि के आदिकारण रूप समुद्र के मंथन से प्रकट होते हैं।

श्रीलक्ष्मी का अंकन भरहुत साँची, अमरावती, बोधगया, मथुरा, खण्डगिरि–उदयगिरि एवं पश्चिमी भारतीय गुफाओं में किया गया है। उसे किसी सम्प्रदाय विशेष तक सीमित न मानकर समस्त भारतीय जनता के गृहस्थ आदर्श की देवी कहना ही यथार्थ है। भरहुत में उत्कीर्ण सिरिमा देवता इसी का रूप है। मथुरा की दृद्धाधारिणी मुद्रा में खड़ी पद्मिनी देवी भी यही है। सूक्ष्म संसार सम्बन्धी सतह पर पूर्ण शक्ति तक मानव की चेतना के खुलने का

प्रतीक कमल का फूलना हैं तालाब की कीचड़ में अपनी जड़ के साथ शाखाएँ पानी पर फैली रहती है। पूर्ण सुन्दरता के साथ प्रकाश में पानी के ऊपर खिलता है। इस प्रकार आधार की अशुद्धता से शुद्धता छनकर निकलती है। जैसे कि किसी की आध्यात्मिक भक्ति से चेतना शुद्ध हो जाती है। सूक्ष्म रूप से कमल जगत सम्बन्धी चेतना का प्रतीक है अथवा पूर्णबुद्धिमत्ता का विचार।

कमल पानी के ऊपर तैरता है जैसा कि भारतीय पौराणिक गाथाकारों का विश्वास है कि पृथ्वी भी पानी के ऊपर तैरती है। इस प्रकार कमल पृथ्वी का प्रतीक है तथा सभी जीवन स्रोतों व सौभाग्य का उद्‌गम है। सभी का जीवन पानी पर निर्भर करता है और पृथ्वी पूर्ण है जिस पर सभी निर्भर करते हैं। इस प्रकार कमल जीवनदायी जल की शक्ति तथा पृथ्वी का प्रतिनिधित्व प्रतीकात्मक रूप से करता है। हिन्दू धर्म में देवी तथा देवता कमलासन पर आसीन होते हैं, मन्दिर जो कि देवताओं का पूर्णगृह है कमल अपने पंखुड़ियों के साथ मन्दिर के आधार के चारों ओर भी उकेरा जाता है। देवता कमल को आभूषण की तरह भी पहनते हैं या उसे अपने हाथों में पकड़े हुए भी अंकित किए जाते हैं।

बहुत से हिन्दू मिथकों में विनाशकारी बाढ़ के बाद सृष्टि निर्माण के लिए नवीन युग का प्रथम जीवन कमल के रूप में महासागर की सतह से निकलता है। हिन्दू धर्म में कमल सृष्टि निर्माण का प्रतीक है। एक मिथक में कमल भगवान विष्णु की नाभि से निकला है, जिससे नई सृष्टि पैदा हुई। भगवान विष्णु की नाभि से निकले हुए कमल से ब्रह्मा निकलते हैं जो कि सृष्टि के उत्पादक हैं। एक बीज से कमल के पौधे के पुनः उत्पादन से मानव पुनर्उत्पादन में समानता होती है। इस प्रकार कमल भावी पीढ़ी के लिए शक्ति के वाहक के रूप में दिखायी पड़ता है। इस प्रकार कमल जीवन का पुर्नवतार, पुर्नउत्पत्ति और पुर्ननवीनीकरण का चक्रचत् होने वाला अर्थ प्रकट करता है। कमल के गुच्छे को भारतीय

कलाकारों द्वारा उसी प्रकार अंकित किया गया है। जीवन के चक्र के विभिन्न काल की तरह एक पात्र से कमल का गुच्छा निकलता हुआ दिखाया गया है जैसे कली, अधखिलापुष्प खिला हुआ पुष्प मुरझाया हुआ पुष्प जो परिपक्वता, वृद्धावस्था तथा मृत्यु को संकेत करता है। ये जीवन के विभिन्न कालों को प्रदर्शित करते हैं। कमल देवी मातृ–देवी से सम्बद्ध है जो पूर्ण परिपक्व तथा खिला हुआ पुष्प उनके सिर के रूप में है। उनके हाथों में कली नये जीवन की शक्ति, गिपूजन, गर्भ, बच्चा तथा प्रौढ़ को संकेत करने वाली पीढ़ी का उचित प्रतीक है।

ये सभी अर्थ मातृ–देवी के आकारों को आरोपित करते हैं। मातृ–देवी के प्रारूप–1, 2, तथा 3 के आकार कमल पुष्प में सर्वोच्च स्थान पर है। भारतीय कविता में एक आदर्श व्यक्ति तथा देवी शरीर के सभी अंगों का वर्णन कमल की तुलना से की गयी है जैसे कमलवत नेत्र, कमल सदृश पाँव, चेहरा आदि।

क्रामरिच द्वारा उद्धृत साँची के स्तूप में स्त्री का रूप कमल के पौधे के आकार में अर्न्तनिहित है।[7] मथुरा के म्यूजियम में पद्म देवी पौधे के रूप में दिखायी गयी है, किन्तु उनका रूप स्त्री मानव रूप को दृष्टिगत करता है। कमल की टहनी स्त्री की शरीर के झुकाव को संकेत करती है, टहनी के सिर पर कमल का सिर है, कमल के सिर के नीचे दोनों तरफ कमल की कली टहनी पर निकलती है। साँप के फन की छतरी कमल देवी की रक्षा करता है जो साँची प्रतिमा मे माले की तरह संकेत करता है। मातृ–देवी की दूसरी प्रतिमाओं में (चित्र–8 और 9) में देवी के पाँव कमल पर स्थित है। दरसूराम तथा अन्य स्थानों पर मातृ–देवी की प्रतिमा कमल की लता की बाजू पहनती है (चित्र–52, 54)।

सिवराममूर्ति ने लिखा है कि विष्णुधर्मोत्तर में कमल लक्ष्मी के चेहरे के रूप में वर्णित है, उसकी उपस्थिति वहाँ पर उसके सौभाग्य को प्रकट करती हुई दर्शायी गयी है।[8]

सिवराममूर्ति ने इस कमल सिर वाली देवी की प्रतिमा को श्रीलक्ष्मी के रूप में पहचाना है। भारतीय देवियों तथा देवताओं के सिर के चारों ओर आभामण्डल कमल डिजाइन के साथ प्रायः चित्रित किया गया है। कमलपुष्प चेतना का प्रतीक है जो सूर्य की किरणों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के अनुसार खुलता है और बन्द होता है। सिर पर खुला हुआ कमल, चेतना का संकेतक है। देवताओं द्वारा भी कभी–कभी कमल का ताज धारण का उदाहरण मिलता है जैसे बादामी की गुफा के तृतीय मन्दिर में नरसिंहा के सिर के ऊपर कमल का ताज देखा गया।[9] मातृ–देवी के चौथे प्रारूप को छोड़कर बाकी प्रारूपों में देवी कमल सिर युक्त हैं जो दैवत्व को संकेत करता है।[10]

मातृ–देवी के पात्र समान पेट का भाग यदि उलट दिया जाय तो वह या तो बन्द कली के रूप में अथवा लिंग कली के रूप में, गर्भ के रूप में दिखायी पड़ता है। यह इस बात का संकेत करता है कि मातृ–देवी के पेट के अन्दर लिंग है अथवा पात्र के अन्दर कमल की कली है। खिला पुष्प अथवा पका फल गर्भ का रूपक है। गर्भ एक कमल के फल जैसा वर्णित है जो लय के साथ खुलता तथा बंद होता है, सूर्य की किरणों के अनुरूप शिश्न एक बन्द कली अथवा हरा फल कहलाता है। ऐसे सभी संसर्ग मातृ–देवी की प्रतिमाओं में दृष्टिगत होते हैं।

पात्र (पूर्णकुम्भ)

अर्थ तथा स्वरूप का सम्पर्क भारतीय कला में विनिमयशील प्रतीक को जन्म देता है। भाषा जो कमल तथा उत्पत्ति और शुभ के साथ कमल के पौधे और स्त्री के शरीर, दोनों के सम्पर्क के सम्बन्ध में लाक्षणिक रूप में स्त्री के शरीर का वर्णन करता है वह कलाकारों को संकेत करने के लिए प्रमाण देता है कि कमल के फूल से ऊपर तक भरा हुआ स्त्री रूपी बर्तन का अंकन गर्भ अथवा योनि रूपी पात्र के समान है। उत्तानपाद पात्र

स्वरूप प्रथम में कलाकार उत्तानपाद के पैरों के स्थान पर उसके मुह से निकलते हुए पुष्प के साथ पात्र के पेट में बैठ गया। पाउनर (चित्र–96) से ज्ञात मातृ–देवी के अंकन की तुलना अमरावती के भित्तिचित्र वाले पूर्णकुम्भ के साथ की जा सकती है। पूर्णकुम्भ और उत्तानपाद पात्र (प्रारूप–1) चित्र का औपचारिक तथा प्रतीकात्मक समानता को छोड़ा नहीं जा सकता है। मातृ–देवी का केवल गर्भ एवं पेट का क्षेत्र पूर्णकुम्भ के आकार का नहीं है, वरन पूर्णकुम्भ का आकार एवं शुभ कारक विचार नागार्जुनकोण्डा, अमरावती, ऐहोल (चित्र–112–116) में देखा जा सकता है। पात्र के गदैन के भाग का आकार देवी के उठे हुए घुटनों सा है जैसा कि ऐहोल हच्चीमाली मन्दिर की ड्योढ़ी रेलिंग के पात्र के नमूने में देखा जा सकता है (चित्र–114) गर्दन या कन्धे के सजावट के रूप में चन्नविरा और नेकलसय पूर्णकुम्भ पर लगा दिया गया है। ब्रग्राम तथा बहुत से दूसरे उदाहरणों में हाथी के दाँत के टुकड़े पर पूर्णकुम्भ का अंकन मिलता है।[11] पूर्णकुम्भ का प्रतीकात्मक अर्थ मातृ–देवी के प्रतीकात्मक अर्थ के बराबर माना जा सकता है, प्रारूप–1 में पूर्णकुम्भ का आकार तथा ब्योरा समान है।[12] कबन्ध का विस्तार जिसमें छातियाँ तथा उनसे जुड़ी कलियाँ तथा पूर्ण खिला कमल तथा सिर के स्थान पर पूर्ण खिला कमलकमल पूर्णकुम्भ से प्रेरणा प्राप्त की होगी जिसमें गोल पूर्ण विकसित स्तन दो अन्य चक्रों द्वारा इंगित है कमल जो पात्र के बाहर विकसित है महत्वपूर्ण है।

फूल पत्तियों से संबद्ध पूर्णघट सुख–सम्पतित और जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। घड़ें में भरा जल जीवन या प्राण का रस है (सलिलम्, तमृ, आपः)। उसके मुख पर लहराती हुई पत्तियाँ और पुष्प जीवन के नानाविध आनन्द और उपभोग हैं। मानव ही पूर्ण घट है। उसी प्रकार विराट विश्व भी पूर्ण कुम्भ है। ये दोनों ही पूर्णता के सूचक हैं, उस समष्टि पूर्ण से यह व्यष्टि पूर्ण उत्पन्न हुआ है (उपनिषद पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते) ऋग्वेद

में जिस पूर्ण या भद्र कलश का उल्लेख है वह सोम से भरा पात्र है। सोम जीवन का अमर और मीठा रस है। अथर्ववेद में घृत और अमृत से भरे पूर्णकुम्भ का उल्लेख है।[13] घर को मंगल घट का मंगल कहा गया है। अथर्ववेद में पूर्णकुम्भरूपी नारी का भी उल्लेख है। इस अभिप्राय के मूल में ऐसा मांगलिक चिन्ह लिया जाता था जिसमें कोई सौभाग्यवती स्त्री मंगल घट लिए शोभा यात्रा में चलती थी। उसे उदककुम्भिनी[14] भी कहते थे। आज भी यह चिन्ह मांगलिग है। ललितविस्तार में मायादेवी की उद्यानयात्रा के प्रसंग में पूर्णकुम्भ कन्या का उल्लेख है। इसकी गणना अष्टकन्याओं में होती थी जो राजकीय शोभा यात्रा की अंग थी। रामायण में रावण के साथ भी अष्टकन्याएँ चलती थीं। राम के अभिषेक के लिए भी ऐसी आठ कन्याएँ और सुग्रीव के अभिषेक के लिए सोलह कन्याओं को आमन्त्रित किया गया। उनमें एक पूर्णकुम्भ या उदककुम्भ कन्या अवश्य रहती थी। युधिष्ठिर अपने नित्य आहिलिक में अष्टकन्याओं के दर्शन करते थे। मथुरा की शिल्पकला में इनका अंकन मिलता है।

भारतीय कला में पूर्णकुम्भ का चित्रण भरहुत, साँची, अमरावती, मथुरा, कपिशा, नागार्जुनकोण्डा, सारनाथ, अनुराधपुर आदि स्थानों में पाया जाता है। भारत के बाहर जावा के बोरोबुदूर स्तूप पर भी पूर्णघट का अंकन मिलता है। पश्चिमी भारत के चैत्य घरों के भीतर मण्डप के स्तम्भों पर शीर्षक और अधिष्ठान में भी पूर्णघट दिखाया गया है। जैन हस्तलिखित ग्रन्थों में पूर्णघट की कल्पना मानवकृति के रूप में है जो नेत्रों से सुसज्जित है और जिसमें फूल पत्तियों की मेखला भी है, उसे मेखलीघट कहते थे। धार्मिक पूजा में पूर्णघट को ब्रह्मा, विष्णु और शिव का प्रतीक मानकर सबसे पहले उसकी स्थापना की जाती है।

नागार्जुनकोण्डा तथा अमरावती के स्तूप के डिब्बेदार पत्थर के टुकड़े पर आकृति वाले पात्र का प्रधान विचार देखा जा सकता है, जो सारनाथ, भरहुत, मथुरा और सांची के स्तूप के सजावट का एक अंग है। बाद के कालों में पात्र नन्दी देवी के द्वारा सहारा दिया हुआ है जिसके जीवनदायक पानी का स्रोत का अर्थ निहित है। मथुरा से अपने स्रोत के रूप में भाग्य के स्रोत स्तम्भ पर खुदी हुई देवी लक्ष्मी के पावों के नीचे पात्र हैं।

चार दिशाओं में व्याप्त विश्व मण्डल के चतुर्भुजी रूप का यह प्रतीक सूर्य से सम्बन्धित है। यह मण्डल प्राची, दक्षिणा, प्रतीची और उदिची दिशाओं से बना है और सूर्य उसका मध्य है। प्राची, प्रतीची, दक्षिणा और उदिची दिशाओं से बना है और सूर्य उसका मध्य है। प्राची, प्रतीची, दक्षिणा और उदिची के विकास से स्वस्तिक बनता है। यह मानव और विश्व का सर्वोत्तम मांगलिक चिन्ह है। रेखाओं को आवश्यकतानुसार घटा–बढ़ा सकते हैं पर इससे स्वस्तिक के पूर्ण मूल्य में कोई क्षय–वृद्धि नहीं होती। जब इसकी चार भुजाओं या रेखाओं को अपने से दाहिनी ओर वितान देते हैं तो उससे स्वस्तिक का और भी सुन्दर रूप सम्पादित हो जाता है। सूर्य के साथ जीवन का कल्याणमय रूप का प्रतीक स्वास्तिक है।

चार दिशाओं की मान्यता या चार लोकपालों की पूजा या व्रत के रूप में स्वस्तिक की पूजा का ही विकास हुआ। इस मान्यता के अनुयायी दिशाव्रतिक कहे जाते थे। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक बार पूर्व–दक्षिण–पश्चिम–उत्तर इन चार दिशाओं का एक साथ उल्लेख आता है। अग्नि, इन्द्र, वरुण और सोम ये चार देवता चारो दिशाओं के अधिपति थे। किन्तु लोकधर्म में यह कल्पना बदली और चार दिशाओं में चार लोकपाल माने जाने लगे। वे ही चर्तुमहाराजिक देव कहलाए। बौद्ध स्तूपों में चार तोरण द्वारों पर उनकी मूर्तियाँ स्थापित की जाने लगी। लोक के अनेक देवता स्वस्तिक की चार दिशाओं से सम्बद्धमान

लिए गए–धृतराष्ट्र एवं गंधर्व पूर्व से कुम्भाण्ड एवं विरूणक दक्षिण से विरूपाक्ष और नाग पश्चित से, वैष्णव एवं यक्ष उत्तर से। लोक मान्यता के अनुसार गन्धर्वों का अधिपति धृतराष्ट्र, कुम्भाण्डों का विरूढ़क, यक्षों का वैष्णव और नागों का विरुपाक्ष था। प्रत्येक वृत चक्र की कुक्षि में स्वस्तिक का रूप रहता है। उसका निर्माण 90^0–90^0 की चार नवतियों का चतुष्कोणों से होता है। यही 360 अहोशत्र या शडन्कु है जिनसे कालचक्र या पृथ्वी के अक्ष चक्र का स्वरूप बनता है। स्वस्तिक को चतुष्पाद ब्रह्म का भी उपलक्षण कह सकते हैं अथवा यह चतुर्भुज ब्रह्म का रूप है जो विश्व का प्रजापति, आधान और विधान करने वाला है। कहा जाता है, चतुष्टयं वा इदं सर्वम्–यह विश्व चतुर्धा विभक्त है। इसके अनेक प्रतीत प्राचीन युग में विभिन्न क्षेत्रों में कल्पित किये गये जैसे चार वेद, चार लोक, चार देव, चार दिशाएँ, चार वर्ण, चार आश्रम, चार होता आदि।

कर्नाटक (चित्र–114) में ऐहोल में 7 वीं शताब्दी के हिन्दू मन्दिर के ड्योढ़ी के रेलिंग के आवृत्ति युक्त श्रेणी में पात्र से उगे हुए केन्द्रीय कमल पुष्प पर स्वस्तिक अर्थात् कुशलता का चित्र अंकित है। पात्र मन्दिरों के शुभकारक पार्श्व के छाया के रूप में भी समाहित है। भरहुत के रेलिंग के मध्य में स्थित पात्र से केवल कमल पुष्प ही नहीं निकलता उसके साथ–साथ राइजोम भी निकलता है जो पात्र को चारो ओर से लपेटे रहता है (चित्र–16)। इस उदाहरण का पात्र जीवन के स्रोत का कार्य करता है। कमल के समान पात्र–कुशलता, उपजाउपन, जलशक्ति तथा जीवन के स्रोत के रूप को संकेत करता है। सम्पूर्ण भारत में परम्परागत वैवाहिक उपचार दुल्हन के लिए जल पात्र होता है, जो बच्चों के प्रजनन में सफलता की इच्छा का संकेत है, निहित विचार यह है कि बिना जल के कोई भी चीज उग नहीं सकती है जिसमें भ्रूण जो गर्भ में जीवन का सहारा देने वाले द्रव से घिरा रहता है।[15]

पात्र का प्रबल रूपक गर्भ के जीवन से परिपूर्ण होने के रूप में मातृ–देवी के प्रारूप–1 में दृष्टिगत अभिव्यक्ति है।

यक्ष

यक्ष भारत में प्रकृति के देवी देवता थे, जिनकी उपासना वैदिक काल से होती थी, यक्ष भूमि और समुदाय के कल्याण और उपजाउपन से जुड़े हुए थे।[16] यक्ष का सबसे प्रचलित पूजा का स्थान वृक्ष के नीचे था और यक्ष (स्त्रीरूप) के जीवन रस को साकार बनाते हुए समझे जाते थे। इस प्रकार यह विश्वास किया जाता था कि बाँझ औरत यक्ष की पूजा करके अपने बाँझपन से छुटकारा पा सकती थी। यक्ष के धार्मिक विश्वास या उपासना जैन धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म द्वारा आत्मसात की गयी।

यक्ष और मातृ–देवी पात्र के स्वरूप के पहलुओं के इस प्रकार विनियमशीलता के निरीक्षण के परे औपचारिक अंश के विधियों के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालना कठिन है जो स्पष्ट रूप से घटित हुआ इस पर भी इन प्रतिमाओं के अवधारणात्मक का यह सामान्य आधार है जो किसी को भी मातृ–देवी की प्रतिमाओं का अध्ययन करने के लिए अनुमति देता है।

पुराण साक्षी है कि सर्वप्रथम यक्ष पूजा ही प्रचलित थी। उसे हटाकर शिव पूजा प्रचलित हुई। मथुरा की कुषाण कला में कुबेर और उनकी पत्नी भद्रा या हरिति की अनेक मूर्तियाँ हैं। भद्रा बच्चों की मंगलकारिणी देवी बन गयी। उसकी पूजा मगध के गांधार तक की जाती थी। ऐसा माना जाता है कि बुद्ध ने उसका राक्षसी रूप छुड़ाकर उसे बच्चों की कल्याणमाता का रूप दिया था। शुंगकाल में यक्ष मूर्तियों का प्रधान्य था, क्योंकि उस समय न तो ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ सामने आयी थीं और न ही बुद्ध और तीर्थंकर मूर्तियाँ अतः प्राचीन परम्परा के अनुसार यक्ष मूर्तियाँ ही पूजा में थी।

भरहुत और साँची के महास्तूप के द्वार–तोरणों पर और वेदिका स्तम्भों पर यक्ष की मूर्ति उत्कीर्ण करायी गयी। अशोक का यह कहना कि उसने जनपद जन से सम्पर्क किया और उनसे धर्म विषयक पूछताछ की (जानपदस जनस दसनं धमपलि–पूछा), इसी ओर संकेत करता है कि जो देवता पहले अनमिल थे उनका मेल हो गया (अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसा कटा)। यही हुआ होगा कि अशोक ने अपना बौद्ध धर्म लोगों को दिया और लोगों ने अपने यक्ष देवता उसे दिए। उसी समय रामायण और महाभारत में यक्ष पूजा सम्बन्धी सामग्री की मोटी धारा आकर मिल गयी।

यक्ष का एक महत्वपूर्ण पर्याय ब्रह्म था। महाभारत में यक्ष महोत्सव या देव यात्रा को ब्रह्म कहा है। इन मेलों में चारो वर्णों के लोग जुड़ते थे (ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च सुविस्मिताः वैश्या) शूद्राश्च मुदिताः चकुर्ब्रह्महं तदा।[17] मत्स्यदेश की राजधानी विराट नगर में ब्रहमह नाम से यक्षो का बड़ा मेला लगता था जिसका प्रबन्ध राजा की ओर से किया जाता था और साथ ही नामी पहलवानों की कुश्ती का अखाड़ा भी बनता था। पुराकाल से ही यक्षों का सम्बन्ध अमरता, दीर्घजीवन और स्वास्थ्य के साथ हो गया था। अमरता आदि गुड़ों के कारण ही यक्ष पूजा लोक में फैली। मूर्तिकला में यक्षों के हाथ में अमृतघट देखा जाता है। शान्तिपर्व में यक्षसदन को अवध्यपुर कहा जाता है, अर्थात् ऐसी नगरी जहाँ मृत्यु की पहुँच नहीं है (शान्तिपर्व) यक्षों के मृत्युंजयगुण पर लोगों का इतना विश्वास बढ़ा कि घोसुंडी के लेख में संकर्षण और वासुदेव इन सर्वोच्च देवताओं को भी 'अनिहत' कहा गया है जो अवध्य का ही पर्याय है। अथर्ववेद में यक्षभवन को अपराजितापुरी कहा है।[18] वहाँ यक्ष के पद को भी ऊँचा उठा दिया गया है और भुवनों के मध्य में स्थित प्रजापति या ब्रह्म को महदब्रह्म कहा है (मह्दब्रह्म भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे)। यक्ष पूजा में

इन तीनों लक्षणों को मान्यता दी गयी है। महत् का अर्थ महाकाय था जो लक्षण यक्षमूर्तियों की सुविशाल देह में घटित होता है। यक्ष की संज्ञा की महत् हो गयी।

यक्ष की पूजा को 'महदुपठान कहा गया। यक्ष को जल या सरोवर के समीप का देवता माना गया। महाभारत के यक्ष युधिष्ठिर संवाद में यक्ष ताल का रक्षक देवता था जिससे पाँच पाण्डवों का संवाद हुआ। इस यक्ष–युधिष्ठिर संवाद के कई श्लोक वही हैं जो यजुर्वेद के ब्रह्मोद्यसूक्त अध्याय 23 में दिये गये हैं। इस बात का निश्चित प्रमाण है कि यक्षों के लिए जैसे श्लोक आदि लोक में प्रचलित हं वैसे ही श्लोक वैदिक युग में लोकगीतों के अंग थे। यजुर्वेद के दो मंत्र से यक्ष–युधिष्ठिर संवाद स्पष्ट है।[19]

यक्षों की कई विशाल मूर्तियाँ ताल या नदियों के किनारे पायी गयी हैं। यक्ष का तीसरा लक्षण तपसिक्रान्तम अर्थात तप या अग्नि के रूप में चलता हुआ कहा गया हैं उसकी पहचान जंगलों में फिरते हुए अग्निपुंज से की गयी है जिसे भूत या यज्ञ कहते हैं। बुद्ध ने यक्षपूजा को तिरच्छानविद्या या मिछाजीव विद्या कहा है (ब्रह्मजालसुत्त)।

ऋग्वेद में भी यक्षपूजा का कई बार उल्लेख है पर उसे सम्भ्रान्त या अभिमत धर्मविधि नहीं माना गया हैं मित्र और वरुण के भक्तों को यक्ष के प्रभाव से बचने के लिए कहा गया है।[20] अद ्भुत कर्म वाले मित्र और वरुण देवता के होते हुए यक्ष पूजा की कोई आवश्यकता नहीं है।[21] एक मंत्र में अग्नि को इतना शक्तिशाली और वृहद् कहा गया है कि वह यक्षों का भी अध्यक्ष होने के योग्य है।[22] अन्य मंत्र में यक्ष के स्थान पर चौरे को यक्षसद्म कहा गया है[23] अग्नि से कहा है कि वह यक्ष सदन में न जाय जहाँ कोई मूढ़ात्मा या पड़ोसी का सम्बन्धी जाता है। ऋग्वेद के एक मंत्र से एक ऐसा उल्लेख है जिसमें यक्षों को भी रूप सौन्दर्य से युक्त माना गया ह। मरुत देवताओं की तुलना यक्ष सदृश शोभा युक्त भक्तों से की गई है।[24] यक्षों की मान्यता का यह उत्तम पक्ष और अधिक प्रबल ह ोता

गया जैसा कि गृह्यसूत्रों से ज्ञात होता है। वैदिक विद्याश्रम या चरण में आया हुआ एक छात्र आचार्य परिषद के सामने यह चाहता है कि वह भी यक्ष की तरह सुन्दर दिखायी पड़े[25] ज्यों–ज्यों यक्ष पूजा में भावना को स्थान मिला जनपद युग में यक्षाों की मान्यता बढ़ती गयी और अन्त में यक्ष लोक के सबसे प्रिय देवता बन गये, जैसा कि पाली, अर्धमागधी और संस्कृत साहित्य में पाया जाता है।[26]

अथर्ववेद में लोकधर्मों का अधिक वर्णन है और वहाँ यक्ष देवता के विषय में अधिक सामग्री पायी जाती है। जब सब राष्ट्रभक्त या अधिकारी यक्ष देवता के लिए बलि का आहरण करते हैं।[27] हिन्दू धर्म की सनातन परम्परा में इन देवियों को पूरी तरह स्वीकार किया गया और इस प्रक्रिया में बहुत कुछ परस्पर आदान प्रदान हुआ। इन्द्र, वरुण, अर्चना आदि वैदिक देवता अपने आसनों से नीचे उतरकर यक्षों की पंक्ति में गिने गये। महाभारत, बौद्ध साहित्य और पुराणों की यक्ष सूचियों से ज्ञात होता है कि वैदिक देवी को भी यक्ष मान लिया गया। आटानाटी सूची में वरुण यक्ष देवता हैं।[28] उस सूची में इन्द्र, वरुण, सोम, प्रजापति को मणिभद्र और आलवक यक्षों के साथ गिनाया गया है। महामाथुरी यक्ष सूची में उदाहरण के लिए द्वारका के यक्ष का नाम विष्णु है।

यक्ष पूजा के सम्बन्ध में दो समान परम्पराएँ हैं : एक नुकीली यक्ष पिण्डियों की परम्परा जो अब भी चालू है और दूसरी विशाल देह की बलशाली मूर्तियाँ। अथर्ववेद ने यक्ष को आत्मनवत् कहते हुए इनके महाकाय स्वरूप पर मुहर लगा दी थी।[29] उत्तरकालीन बोधिसत्व, तीर्थंकर और विष्णु मूर्तियाँ भी यक्ष मूर्तियों की अनुकृति हैं। यक्षों की कुछ पाषाण मूर्तियों का समय तीसरी–चौथी ई0 पू0 में रखा जा सकता है। मिट्टी की विशाल महामूर्तियाँ अखाड़ों में पहलवानां द्वारा अब भी बनायी जाती हैं। उत्तर भारत के कुछ अखाड़ों में अब भी बड़े आकार की मूर्तियाँ बनाकर स्थायी रूप से पूजी जाती हैं। इस प्रकार यक्ष मूर्तियों

की पूजा की परम्परा सुरक्षित रही है। यक्ष का अभय मुद्रा में उठा दाहिना हाथ कालान्तर में बुद्ध मूर्तियों में भी बनाया गया। कुछ मूर्तियों में यक्ष के हाथ में चमर भी दिखाया जाता था। इसका भाव यह था कि यक्ष देवता महाराजा कुबेर के अनुचर थे। उनके बायें हाथ में अंकित घट या निधि भी कुछ मूर्तियों में देखी गयी हैं, जो अमृतत्व का लक्षण था। यक्षों के बहुत से नाम थे : उनमें से पंचवीरों के नाम चुन लिये गये उसी से पंचवीर संज्ञा निकली। इन पाचों के नाम इस प्रकार हैं–मणिभद्र, पूर्णभद्र, दीर्घभद्र, यक्षभद्र और स्वभद्र (विष्णुधर्मोत्तर पु0)। वे वैश्रवण परिवार के पार्श्व देवता थे। इन्हीं की अनुकृति पर भागवत धर्म में पंच वृष्णिवीरों का विकास हुआ तथा पंचव्यूह के अन्तर्गत संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनरुिद्ध और साम्ब थे, जिन पर भागवतों ने अपने धर्म और दर्शन का भारी ढाचा तैयार किया। मथुरा में मोरा गाँव के कूपशिला लेख में वृष्णि पंचवीरों का उल्लेख है। ऐसा समझा जाता था कि यक्ष मणिभद्र के पास एक भद्रमणि थी। वह धनपति कुबेर के कोष का स्वामी था। अमरत्व और धन के कारण लोगों के मन पर यक्ष पूजा का बहुत प्रभाव हुआ। धर्म साहित्य और कला तीनों से इस प्राचीन पूजा का समर्थन होता है।

भारतीय धरती पर यक्ष पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से पायी जाती रही है। हड़प्पा–सभ्यता की उत्कीर्ण मोहरों पर कुछ ऐसे दृश्यांकन हैं जिनसे तत्कालीन यक्ष पूजा का संकेत मिलता है। वैदिक तथा पौराणिक साहित्य, महाकाव्यों और जैन–बौद्ध साहित्य में यक्ष परम्परा के साक्ष्य भरे पड़े हैं। अथर्ववेद में यक्षों को पुण्यजनाः कहा गया हैं महाभारत के अरण्यकपर्व में विरूपाक्षं महाकायं यक्षं तालसमुच्छयम कहकर यक्ष की प्रशंसा की गयी है। रामायण में यक्ष को अमर कहा गया है।[30] महामायूरी ग्रन्थ में देश के विभिन्न नगरों के नगर–देवता के रूप में यक्षों की सूची दी गयी है। पुत्र की कामना करने वाली नारियाँ यक्ष पूजा के लिए जाया करती थीं। ऐसा विवरण महाभारत में मिलते हैं। यह यक्ष–परम्परा

किसी न किसी रूप में आज भी भारत के गाँव–गाँव में बरम बाबा (ब्रह्म) अथवा जक्ख–जखैया (यक्ष–यक्षी) के रूप में वर्तमान है।

भरहुत के एक बड़े बौद्ध स्तूप को सम्पूर्ण जीवन के स्रोत के रूप में पात्र के प्रतीकात्मक कार्य कुछ वैदिक पदकों पर खुदे हुए उत्तानपाद की स्थिति में पुरुष यक्ष का चित्र है जिसके नाभि अथवा मुंह से कमल का पौधा निकलता है (चित्र–118–120)। यक्ष मातृ–देवी के समान केवल उत्तानपाद की स्थिति में नहीं हैं वरन घुटनों के पीछे कोहनी रखे रहते हैं, और मातृ–देवी की तरह प्रत्येक हाथ में डंडी सहित कमल की कली लिए रहते हैं। उत्तानपाद स्थिति में पुरुष यक्ष का अंकन यह दर्शाता है कि प्रजनन की अवधारणा इस स्थिति से जुड़ी थी। इन प्रारम्भिक यक्ष के चित्रों के रंग–ढंग के सम्बन्ध में आन्ध्र–प्रदेश से प्राप्त बहुचित्रित पट्टिका को स्मरण करना रुचिकर है (चित्र–104–107)। इस पट्टिका में मातृ–देवी के नीचे खुदा हुआ यक्ष उनका वाहन प्रतीत होता है। भरहुत से यक्ष के अन्य अंकनों में यक्ष का वाहन कुछ तुलनात्मक छोटा यक्ष है।

कुमारस्वामी (1971) ने विश्वास व्यक्त किया कि एक नमूने के रूप में जिस आधार पर देव शिव की प्रतिमा बनायी गयी उसी प्रकार यक्ष की प्रकृति उसके लिए सहायक सिद्ध हुई। इसीलिए यह आश्चर्यजनक नहीं हैं कि देवी जो शिव की प्रतिमूर्ति माने जाने लगी, वही विशेषता तथा शक्ति यक्षणी में प्रदान की जानी चाहिए। जैसा कि उत्तानपाद का चाल–ढाल, हाथ में कमल और जीवन के स्रोत के रूप में पहल करता है।

श्रीवत्स

एक बार सरस्वती नदी के पावन तट पर यज्ञ करने के निमितत बड़े–बड़े ऋषि एकत्र हुए। उन लोगों में विवाद चल पड़ा कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव में सबसे बड़ा कौन हैं इस विषय का निर्णय करने के विचार से उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और शिव की परीक्षा लेने

के लिए महर्षि भृगु को उनके पास भेजा। भृगुजी पहले ब्रह्मा की सभा में गये और धैर्य की परीक्षा के विचार से उन्होंने न तो उन्हें प्रणाम ही किया ओर न उनकी स्तुति ही की अपनी यह अवहेलना देखकर ब्रह्मा को क्रोध आ गया पर यह देख करके बात की कि यह तो मेरा ही पुत्र है, उन्होंने क्रोध को मन से ही दबा लिया। भृगु उनकी यह बात जान गये ओर वहाँ से उन्होंने कैलाश की यात्रा की, भगवान शिव ने जब भृगु को देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और उनका आलिंगन करने के लिए उन्होंने अपनी भुजाएँ फैलायीं पर महर्षि भृगु ने उनका आलिंगन नहीं किया और कटाक्ष करते हुए कहा, तुम लोक और वेद की मर्यादा का उल्लंघन करते रहते हो, इसलिए मैं तुमसे नहीं मिलता। शंकर भगवान क्रोध से तिलमिला उठे, परन्तु भगवती सती के अनुनय विनय करने पर शान्त हो गये। अब महर्षि भृगु भगवान विष्णु के निवास स्थान पर पहुँचे उस समय भगवान अपनी शैय्या पर पड़े थे। भृगु ने जाते ही उनके वक्षस्थल पर एक लात मारी विष्णु भगवान ने इस पर ध्यान नहीं दिया। लक्ष्मी के साथ भृगुजी को प्रणाम करके कहा 'स्वागत है आपका भू–देव'। आप इस आसन पर थोड़ी देर विश्राम कीजिए। मुझे आपके शुभागमन का पता नहीं था, इसी से मैं आपकी आगवानी भी नहीं कर सका, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मुनिवर आपके चरणों का जल पवित्र करने वाला है, आप अपने चरणों के द्वारा वैकुण्ठ लोक और मुझे भी पवित्र कीजिए, मेरा वक्षस्थल अब सदा आपके चरणों के चिन्ह से अंकित 'श्रीवत्स' कहलाता है।[31]

श्रीवत्स विष्णु की छाती पर अंकित चिन्ह है। विष्णु की छाती पर यह चिन्ह पुरकथा के अनुसार भृगु के विष्णु को लात मारने से बना था।[32] वैष्णों एवं विष्णु के भक्तों के लिए यह देवता विश्व एवं समस्त पदार्थों का जन्म दाता है। हिन्दू धर्म की एक सर्वाधिक प्रसिद्ध सृष्टि सम्बन्धी कथा के अनुसार विष्णु आदितम सिन्धु में सहस्रफणधारी शेषनाग पर शयन करते हैं जब वे निद्रामग्न होते हैं तब उनके नाभि से एक कमल की उत्पत्ति होती है।

उस कमल से विश्वनियन्ता ब्रह्मा का जन्म होता है, जो संसार की सृष्टि करता है। एक बार जब सृजन हो जाता है, विष्णु की निद्रा भंग हो जाती है। वे उच्चतम बैकुण्ठ में शासन करते हैं। सामान्य रूप से उन्हें चतुर्भुज रूप सघन नीले रंग की आकृति में राजमुकुट धारण किए सिंघासनारूढ़ प्रदर्शित किया गया है। उनके हाथों में प्रतीक के रूप में शंख, चक्र, गदा और कमल होते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि उनके वक्ष पर कुचित केशों की एक ग्रन्थि रहती है जिसे श्रीवत्स कहते हैं।[33]

जैन साहित्य में तीर्थंकर के साथ उसका कोई न कोई प्रतीक चिन्ह, सम्बन्धित किया गया है। कुछ प्रमुख प्रतीक निम्न हैं–

वृषभ, गज, अश्व, मर्कट, हंस, कमल, स्वास्तिक, मकर, श्रीवत्स, गैंडा, महिष, वराह, गरुण, वज्र, मेष, कलश, सूर्य, शंख, नाग एवं सिंह। इसमें से कुछ प्रतीकों को तीर्थंकरों का वाहन माना जा सकता है पर कुछ निश्चित रूप से आदिम जातियों के प्रतीक चिन्ह हो सकते हैं। सम्भवतः इन प्रतीकों से उस वातावरण का पूर्वानुमान किया जा सकता है जिनके मध्य सम्बन्धित तीर्थंकर या तो उत्पन्न हुए या जिनकी पूजा उनसे प्रचलित थी।

मथुरा संग्रहालय की बी 32 संख्यक प्रतिमा स्थानक मुद्रा में जिन मूर्ति का प्रारम्भिक स्वरूप प्रदर्शित करती है जो चौमुखी प्रतिमाओं में भी मिलता है। जिनके अगल–बगल दो चाँवरधारी पुरुष हैं। लखनऊ संग्रहालय की जे0 31 संख्यक मूर्ति पर कुषाण संवत् 80 या 82 (158–160 ई0) का अभिलेख है। जिनकी इस मूर्ति के वक्षस्थल पर 'श्रीवत्स' का चिन्ह अंकित है। लेख में उन्हें वर्धमान कहा गया है। चौकी पर बीच में चक्र और उसकी पूजा करते भक्त जन हैं। मथुरा कला से तीर्थंकरों के लाच्छन नहीं पाये जाते जिनसे कालान्तर में उनकी पहचान की जाती थी। केवल आदिनाथ और ऋषभनाथ के कन्धे पर खुले हुए केशों की लटें दिखायी गयी हैं और सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्प फणों का आटोप बनाया

गया हैं इन मूर्तियों की चौकी पर सामने सिंह और धर्मचक्र की पूजा के लिए आए हैं। एक महत्वपूर्ण फलक के ऊपरी हिस्से में स्तूप के अगल–बगल पद्मासन में बैठे ध्यानमुद्रालीन चार तीर्थंकर अंकित हैं। निचले मुख्य भाग में एक अर्धफलक नग्न अर्हत आकृति और एक देवी है। इस अर्हत का नाम उसके सिर के बगल में 'कण्हश्रमण' उत्कीर्ण है। ऊपर तीर्थंकरों के साथ का लेख कुषाण संवत् 95 अर्थात् 173 ई0 का है। चार जिन आकृतियों में सुपार्श्वनाथ अपने फणाटोप प्रथम तीर्थंकर ऋषभ अपनी केश–राशि से अलग पहचान में आते हैं। चारों के वक्षस्थल पर 'श्रीवत्स' चिन्ह है। तीर्थंकर मूर्तियों के वक्ष पर 'श्रीवत्स' एवं मस्तक के पीछे तेजचक्र या प्रभामण्डल पाया जाता है। श्रीवत्स चिन्ह केवल जिन प्रतिमाओं पर मिलता है, बुद्ध की मूर्तियों पर कभी नहीं। जनों ने आरम्भ में ही श्रीवत्स चिन्ह को अपना लिया था। खारवेल के हाथी गुम्फा लेख के प्रारम्भ में वह बना है। पद्मासन में स्थित मूर्तियों में केवल ध्यान–मुद्रा मिलती है। मथुरा संग्रहालय की बी0 71 चौमुखी प्रतिमा है जिस पर चार दिशाओं में खड़े हुए चार जिन दिखाए गए हैं। तीन में मस्तक के पीछे तेजराशि और एक में फण है। सबके वक्षसिल पर 'श्रीवत्स' का चिन्ह है। चारो चौकियों पर उपासना करते हुए श्रावक–श्राविका है और एक लेख पंक्ति है जो कुषाण संवत् के 5 वें वर्ष अर्थात् 83 ई0 की है।

श्रीवत्स का शाब्दिक अर्थ श्री का पुत्र है। मातृ देवी के रूप में श्री के गोद में प्रायः एक बच्चा दिखाया जाता है। इसका छोटा अनगढ़ मस्तक और ठूढ़ जैसे हाथ पैर होते हैं। यह बच्चे की भौड़ी आकृति है। यह श्रीवत्स चिन्ह अष्टमंगलों में गिना जाने लगा और जैन धर्म में तीर्थंकर मूर्तियों के वक्षस्थल पर इसका अंकन किया जाने लगा। बाद में विष्णु मूर्तियों के साथ भी श्रीवत्स चिन्ह का सम्बन्ध जुड़ गया।[34]

जैन–पूजा से सम्बन्धित उत्कीर्ण कला के प्राचीन उदाहरण मथुरा से मिले आयागपट्ट हैं। इन्हें ब्यूहलर ने टेबलेटस आव होमेज' अर्थात पूजा–पट्ट कहा है। 'आयाग' शब्द से यजन देवता का ही संकेत मिलता है। ये आयागपट्ट पत्थर के चौकोर फलक हैं जिस पर विभिन्न मांगलिक प्रतीकों के बीच पहली बार जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं का अर्द्धचित्रण पाया गया है। ऐसे भी आयागपट्ट पाए गए हैं जिन पर केवल अष्टमांगलिक प्रतीकां का ही अंकन है, तीर्थंकर का नहीं। इन प्रतीकां में स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, चक्र मीन–मिथुन, पूर्णघट या मंगल, कलश, शंख, माला, वर्द्धमान, भद्रासन आदि मुख्य हैं।[35]

देवताओं तथा देवताओं के प्रतीक के रूपों के मध्य अर्थ की अवधारणा तथ समानता को जब कलाकार और उनके संरक्षकों अथवा पुरोहितों ने देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके स्वरूपों के पहलुओं में तत्परता के साथ आपस में बदलाव लाया गया है। पूर्णकुम्भ अथवा यक्ष के अतिरिक्त जीवन शक्ति एक अन्य वैकल्पिक प्रतीक के रूप में श्रीवत्स है जो भाग्य का चिन्ह है और जो तीसरी शताब्दी ई0 में केसनापल्ली (गुण्टूर जिला आन्ध्र प्रदेश) के एक बौद्ध मन्दिर के द्वार पर जीवन स्रोत के प्रतीक के रूप में प्रदर्शित है (चित्र–121)। पात्र और यक्ष की प्रतिमाएँ प्रदर्शित करती है, श्रीवत्स से निकलती हुई कमल रूपी जीवन की मूल विधि यहाँ देखी जा सकती हैं।

दृष्टिगत आकृति की संसर्ग की कड़ी इन स्रोत प्रतीकों को मातृ–देवी तक जोड़ती है। मातृ–देवी के सजातीय पूर्वगामी शुभकारक उत्तम विचार के समूह में पहचाना जा सकता है, जैसा कि वित्रित्र तथा अत्यधिक ढाँचा बाद के मातृ–देवी के प्रतिमाओं के अंगों के रूपरेखा मं समान आकार के श्रीवत्स तथा कमल को जोड़ता है।

जैसा उदाहरण के लिए वे जो देखे जाते हैं साँची द्वितीय तथा भरहुत (100 ई0पू0) (चित्र–110–11–122) के स्तूप रेलिंग को सजाते हुए उनमें मातृ–देवी से तुलना किए जाने

पर सामान्यतः सादृश्य कलात्मक पृथक्करण मिलता है, उदाहरण के लिए (चित्र–110) में प्रत्येक पक्ष में कमल की कली युक्त छोटी गाँठ के समान मस्तिष्क वाला मनुष्य के आकार के ईश्वर के झुके हुए भुजा और पाँव से युक्त (चित्र–111) में साँची द्वितीय से उसी रूपरेखा से युक्त कमल का फूल सिर के रूप में कार्य करता है। जिसमें कमल की शाखाएँ भुजा और कली युक्त फूल हाथों का संकेत करते हैं जब कि नीचे का शरीर नीचे के श्रीवत्स का अलग किया हुआ रूप है। यही खाका साँची में कई बार मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। रूपों के कुछ संगम जो यहाँ मातृ–देवी के रूप तथा श्रीवत्स के अंगों के साथ प्रदर्शित किये गये हैं, स्पष्ट मालूम पड़ते हैं[36]

भरहुत (सतना जिला मध्य प्रदेश) से एक दूसरे उदाहरण में द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के स्तूप रेलिंग का क्रासबार की रूपरेखा वही है जैसा कि श्रीवत्स में है किन्तु यह कमल से निकलते हुए पौधे के भागों से बना है (चित्र–122)। रूपरेखा सिर भुजा को पकड़े हुए तथा पैरों को मातृ–देवी के प्रतिरूप स्थिति में फैलाए हुए है तथा इसमें ग्रीफीन; एक कल्पित जन्तु जिसका शरीर और पंजा शेर के समान तथा चोंच और डैना बाँज पक्षी के समान माना जाता है; जानवर के समान केन्द्र से बगल कूदता हुआ गया है।[37]

मातृ–देवी तथा श्रीवत्स के प्रारूप तथा अर्थ में सम्बन्ध का होना प्रतीत होता है, और उसके द्वारा श्री, श्री–लक्ष्मी और गज–लक्ष्मी सभी कल्याण की देवी में रक्त सम्बन्ध है। श्रीवत्स की रूपरेखा मातृ–देवी के समान है, लक्ष्मी को श्रीवत्स कहा जाता है।[38] अथवा श्रीवत्स लक्ष्मी की चिन्ह के रूप में हैं। श्रीवत्स अपने मूर्तिप्रतिमा के रूप में साँची में बुद्ध के तोरण द्वार मार्ग की स्तूप प्रथम के चोटी पर तथा उदयगिरि–खण्डगिरि द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में जैन के पहाड़ में कटा हुआ मन्दिर अनन्तगुफा के दरवाजे के चोटी पर श्री

प्रदर्शित किया गया हैं भरहुत में जैसा कि वर्णित है कि श्रीवत्स का रूप पौधे के अंग (चित्र–122) के साथ उत्पन्न किया गया है।

श्रीवत्स प्रायः भाग्य के रूप में वर्णित है। श्रीवत्स का दूसरा रूप श्री का बच्चा के आशय को प्रकट करता है।[39] कलात्मक रूप से श्रीवत्स के कई रूप हैं। श्रीवत्स के बाद के उदाहरण में बालों की माला, त्रिभुज अथवा क्रास के आकार के फूल के समान बनाये गये हैं, किन्तु इसमें प्रारम्भिक रूपों में श्रीवत्स के पास ऊपर की ओर जुड़े हुए चार अंग हैं जो एकरूपता के साथ जोड़े में हैं, जिसके रूप का वर्णन ढाल के आकार का वर्णन किया गया है। प्रारम्भिक चिन्ह की व्युत्पत्ति वासुदेवशरण अग्रवाल महोदय के अनुसार अपरिपक्व निर्मितम बच्चे के आकार से हैं बच्चे के साथ श्रीवत्स के समानता के पक्ष में अग्रवाल कॉशा के मानव रूप के देवता की तरह संकेत करते हैं। (चित्र–128)[40] जिसके पास गाँठ सी भुजाएँ और पाँव हैं और श्रीवत्स आकार के आभूषण के समान है जो अहिछत्र से मिट्टी के पके हुए पट्टिका पर प्रिय जोड़े के औरत के रूप में पहचाना गया हैं यह महत्वपूर्ण है कि यह अहिछत्र श्रीवत्स आभूषण जो लम्बे नेकलेस के केन्द्र से झुलता हुआ ठीक उसके गर्भ के ऊपर स्थिर रहता है, अग्रवाल महोदय का यह विश्वास है कि यह पदार्थ उपजाउपन के ताबीज को प्रदर्शित करता हैं अग्रवाल महोदय यह भी संकेत करते हैं कि 1500 ई0पू0 में श्रीवत्स और मानव सदृश्य ईश्वर के ताँबे के पदार्थ में सम्बन्ध है जो गंगा की घाटी में पाया गया। वे पदार्थ जिनका मौलिक कार्य ज्ञात नहीं है का प्रयोग माता देवी या मातृ–देवी के प्रतीक के रूप में किया जा सकता है।[41]

जैन धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म में तथा यक्ष के धार्मिक विश्वास के काल में, सम्पूर्ण भारतीय कला में श्रीवत्स दिखलायी पड़ता है। यह आठ शुभकारक प्रतीकों में से एक है, जैसे कि पात्र है। यह प्रतीक जैन, बौद्धक, विष्णु, गरुण और शिव आदि देवताओं के

छातियों पर दिखायी पड़ता है और यह महान प्राणी के प्रतीक के रूप में श्री, भाग्य या कुशलछेम के उद्देश्य से पहना जाता है।

श्रीवत्स कुटुम्ब का अर्थ प्रदर्शित करता है। यह मानव तथा वनस्पति सम्बन्धी उपजाउपन का संकेत करता है, बहुलता, समृद्धि भाग्य, उपजाउपन की विस्तृत अवधारणा के द्वारा दो को एक में जोड़ते हुए या तो मानव या वनस्पति के रूप में प्रयोग करते हुए तृतीय शताब्दी ई0पू0 में एक गोल पत्थर पर वही अवधारणा व्यक्त की गयी है जिस पर नागपुष्प आकृति (चित्र–123) में वनस्पति तथा मानव का सम्बन्ध देखा जाना वह भी उत्पादकता के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।[42] वस्तुतः अन्तर परिवर्तनों के प्रतीक के रूप में यह प्रस्तुत है जो प्रथमतः वनस्पति तथा देसरे जीव से सम्बन्धित है।

पेड्डामुडियम से बहुचित्रित पत्थर की पट्टिका पर कमलवत सिर वाले देवी तथा दूसरे उसी प्रकार की पट्टिका पर श्रीवत्स स्थापित है (चित्र–126) श्रीवत्स दाहिनी तरफ से देखी जाने वाली सिर से मानवीकृत की गयी है किन्तु सिर में चेहरे का आकार नहीं है जैसा कि मातृ–देवी के पास प्रायः कमल से अधिक चेहरा नहीं है। इस पट्टिका में श्रीवत्स की रूपरेखा ऊपर झुके हुए भुजाओं और पावों से युक्त मातृ–देवी के समान है वे अपनी भुजायें पकड़े हुए हैं तथा पाँव फैले हुए उत्तानपाद की स्थिति की अपेक्षा कुछ भिन्न तरीके से घूमा हुआ है। इस पट्टिका में श्रीवत्स दूसरे देवताओं के समान ताज पहनी हुई है और पट्टिका के दूसरी ओर श्रीवत्स के बायें से दाहिने गणेश, ब्रह्मा, नरसिम्हा, शिव के लिंग, विष्णु और देवी हैं नन्दी के ऊपर उमामहेश्वर हैं महिषासुरमर्दिनी महिष को हराती हुई हैं। पट्टिका के दाहिने किनारे पर महिषासुरमर्दिनी के ऊपर श्रीवत्स स्थित है।[43] 9वीं शताब्दी ईस्वी की एक छोटी काँसे की श्रीवत्स (चित्र–125) तमिलनाडु के तंजौर जनपद इनाडी से प्राप्त है वह गौरमेंट म्यूजियम मद्रास 39/35 में सुरक्षित है। वह श्रीवत्स को दर्शाती है

इस प्रतिमा में सिर तो है किन्तु मुखाकृति नहीं है। यह श्रीवत्स एक चन्नवीरा नामक आभूषण धारण किये हुए है तथा अपने पाँवों और भुजाओं को मोड़े है और वह एक कमल के सिंहासन पर स्थित है।[44]

मद्रास के गौरमेन्ट म्यूजियम (112/38, 39) कावेरीपक्कम उत्तरी अर्काट जनपद तमिलनाडु में गजलक्ष्मी श्रीवत्स के काया का प्रतिनिधित्व करात है, जिसे दो गज स्नान कराते हुए देखे जाते हैं, यह भूरे ग्रेनाइट पत्थर में (चित्र–124) पल्लव शैली में 8वीं–9वीं शदी ईस्वी में उकेरी गयी है। पुनश्च इस प्रतिमा में भी सिर तो है किन्तु मुखाकृति नहीं है। बाँयी दिशा का गज अपने सूड़ में उसके सिर पर एक कमल लिये हुए है। कमल के सिंहासन के प्रत्येक ओर एक दीप है, दीप के नीचे बाँयी ओर एक कमल है और नीचे के तरफ दाँयी ओर एक शंख है। एक चन्नवीरा जो कबन्ध के आर पार है, जिसमें ऊपर की तरफ, खुदी हुई भुजायें और पाँव हैं, इसमें देवी गले में माला, कान में कर्णफूल, सर पर एक मुकुट या टोपी धारण किये है। इस उदाहरण में लक्ष्मी श्रीवत्स की आकृति से तादात्म रखती है।[45]

मातृ–देवी की पूर्वगामी रूपों की समता प्रमुख छः गौरियों से की जानी चाहिए। मातृ–देवी की ऐसी आकृतियाँ जो कांस्य श्रीवत्स से मिलती हैं उनका काल 1000 ई0पू0 है। कांस्य श्रीवत्स का अंकन श्रीलंका से ज्ञात है। यह अब ब्रिटिश संग्रहालय में है।[46] कांस्य श्रीवत्स का दूसरा अंकन धनबाद बिहार से ज्ञात है जो अब पटना संग्रहालय में है।[47] इन्हें मातृ–देवी का पूर्वगामी रूप कहा जा सकता है।

मेढक

विक्टोरिया और अल्वर्ट संग्रहालय में पायी जाने वाली अद्‌भुत मातृ–देवी की आकृति (चित्र–66–68) मजबूत दो तरफा पकी हुई मिट्टी की मूर्ति है जो बिल्कुल हाथ की हथेली

में बैठ जाती है तथा जिसका वजन मात्र एक पाउण्ड है। एक तरफ उत्तानपाद की दशा में देवी की यह मूर्ति मातृ–देवी के प्रारूप–4 मानवरूपकीय के अनुरूप दिखती है। अद्‌भत प्रकार के इस चित्र की देवी का यह अंकन मात्र एक तरफ मेढक सा मिलता है वरन दूसरी तरफ भी मेढक आकार का है।

क्राड्रिंगटन ने लिखा है कि कुछ लाल पकी मिट्टी वाली मेढक आकृति की देवी की उत्पत्ति स्थान मथुरा है, क्योंकि मथुरा के संग्रहालय में इस देवी की मूर्तियाँ समूह में पायी गयी थीं। मेढक के आकार वाली इस स्त्री की मूर्ति की नाक तथा वक्षस्थल कुछ कुचला हुआ कुषाण काल की मथुरा की इस लाल पकी मिट्टी वाली मेढक आकृति वाली स्त्री का बाल दूसरी शताब्दी ईस्वी हो सकता है।[48] यद्यपि यह मातृ–देवी की प्रारूप–4 की तरह की होगी अन्यथा प्रारूप–4 प्रारम्भिक छठीं शताब्दी ईस्वी की होगी ऊपर की ओर उठे स्त्री के हाथ मेढक के अगले पैर जैसे हैं, और स्त्री के पाँव मेढक के पिछले पाँव से इस तरह जुड़ा है कि उसका पाँव लचीला हो गया है और विलक्षण ढंग से उसके पंजे ऊपर हो गये हैं। मातृ–देवी की प्रतिमा की यह सामान्य पुर्नर्जीवित अवस्था है। एक नुकीली टोपी जो स्त्री द्वारा पहनी गयी है, मेढक का निचला जबड़ा है चेहरा जो सख्त ढंग से निर्देशित है एक विशालकाय नाक और कानों के साथ है, लेकिन इसमें मुँह नहीं है। स्त्री का चेहरा धड़विहीन मानवीकृत किया गया है जैस कि श्रीवत्स में हाथ क्षत–विक्षत है। स्त्री के बाल माथे से ऊपर की ओर खीचकर सिर पर एक गाँठ के द्वारा व्यवस्थित किये गये हैं। उसने केश–विन्यास के समान उभार–युक्त गजरा पहन रखा है, जो केश गुच्छ के साथ मिलकर उसके सिर को पुष्प दल–पुंज का स्वरूप दे रहे हैं। नग्न चित्र का पण्डेंडम क्षेत्र दो पट्टियों द्वारा आहत है।

विक्टोरिया और अल्वर्ट की पकी हुई मिट्टी की मूर्ति प्रजनन की ताबीज के रूप में पहचानी गयी है जो कि सम्भवतः मेढक और मादा की स्थिति मं उद्धृत की गयी है इस प्रकार दोनों प्रजनन के विचार का सुझाव देती है, दोनों का इस तरीके का जोड़ा विलक्षण है[49] मेढक की प्रतिमा इसके बाह्य प्रतिमा से मिलती है और पीछे के पीठ की रीढ़ प्रारम्भिक अवस्था में है, जैसा कि श्रीवत्स के प्रारूप में दिखता है उदाहरणार्थ प्रथम शताब्दी ईस्वी में सारनाथ के रेलिंग पर महिला का बाहरी आवरण श्रीवत्स जैसा है, और श्री का मनपसन्द प्रतीक सौभाग्य की देवी है। विक्टोरिया अल्वर्ट के मातृ–देवी के सर पर वही नुकीली टोपी दिखायी पड़ती है जैसा कि श्रीवत्स के पेड्डामुडियम (चित्र–126) स्थल से और श्रीवत्स के कनकलीटीला मथुरा के जैन तीर्थंकर के वक्ष पर इसी प्रकार वस्तुतः सन्नाटी (कर्नाटक) से प्राप्त बर्तननुमा उत्तानपाद (प्रारूप–1) मूर्ति के ऊपर कमल की तरह की एक टोपी दिखायी देती है (चित्र–7)। जिसका तिथिक्रम 165 ई0 है।[50] इन सबके सर पर एक नुकीली टोपी दिखती है इन मूर्ति प्रतिमाओं की समरूपकता यह निर्देशित करती है कि सौभाग्य के विचार के प्रस्तुतीकरण के लिये जो विविध प्रारूप दिये गये हैं चाहे वे श्री लक्ष्मी या पद्म श्रीलक्ष्मी श्रीवत्स या मातृ–देवी के ये सब एक ही प्रारूप से लिये गये हैं। यद्यपि सौभाग्य की देवी के विविध प्रारूप वैयक्तिक हैं। कलात्मक साम्राज्य के प्रस्तुतीकरण के लिये इसमें वे विविध प्रतिमाओं में हिस्स लेते हैं।

उत्पादन के साथ मेढक का समागम प्राचीन और सार्वभौगिक प्रतीक है, सातवीं और छठीं शताब्दी ईस्वी में मेढक की देवी की कल्पना बेल्कन और दक्षिणी ग्राी से मिर्जा जिम्बुटस द्वारा प्रकाशित की गयी है। मेढक की देवी एक पत्थर और पकी मिट्टी की पट्टिका पर एम–मुद्रा में फैले हुए पाँव के साथ उकेरी गयी है। इनमें सिर नहीं है या सिर केवल प्रतीक के रूप में है। दक्षिणी ग्रीस की एक प्रतिमा भारतीय मातृ–देवी की तस्वीर से बहुत

ज्यादा मिलती है। जिम्बुटस संसय करते हैं कि इसमें एक छिद्र है, जिसमें एक मानव के सिर को प्रवेश कराया जा सकता है।[51] शायद नैसर्गिक रूप से वहाँ कमल को ही प्रविष्ट कराया जा सका। पूर्वोत्तर भारतीय मिथकों में मेढक का जुड़ाव जन्म के साथ या गर्भ या गर्भाशय के साथ है।[52]

उत्पादन के रूप में मेढक वर्षा पृथ्वी से प्रजनन के रूप में उत्तरदायी है। मिश्र की हेरोग्लिफिक लिपि में मेढक के बच्चे को एक लाख की संख्या का प्रतीक माना जाता है। जो मेढक के आश्चर्यजनक प्रजनन की शक्ति का सुस्पष्ट सन्दर्भ है। मेढक की यह प्रजनन वर्षा ऋतु की नील नदी के तट के कीचड़ में सुस्पष्ट देखी जा सकती है। इसी से मेढक का सम्बन्ध शिशु प्रजनन की संरक्षिका देवी हेकेट से किया गया है।[53] 3100–2700 ई0पू0 तक मेढक के प्रजनन से लेकर हेकेट देवी तक अब क्लिव लैण्ड संग्रहालय में है, अब भी बच्चों के सफल जन्म प्रजनन के आकांक्षी महिलायें पूजा–अर्चना कर रही हैं उदाहरणार्थ अबयदास स्थल की प्रतिमा बाद के मिश्र की कला में देवी हेकेट का प्रस्तुतीकरण मेढक के सिर का समायोजन मानव के शरीर से किया गया। मेढक का सम्बन्ध पुनर्जनम के जीवनचक्र के प्रतीक के रूप में किया गया, हैरोग्लिफिक लिपि का प्रयोग पुर्नजन्म के युक्त के विस्तार के रूप में किया गया है।[54]

निचले आस्ट्रेलियन मैसू स्थल से 1000 ई0पू0 के मेढक के बच्चे की देवी की पृथक प्रतिमाएँ गौल्डर द्वारा प्रकाशित की गयी।[55] इस द्विपक्षीय प्रतिमा का एक पक्ष मेढक का बच्चा है जबकि उसके विपरीत का पक्ष महिला की प्रतिमा है, जैसा कि मथुरा के मेढक देवी की धारणा है, यद्यपि मथुरा की प्रतिमा ज्यादा कलात्मक ढंग से प्रतिशोधित है। गोल्डर का मत है कि मेढक के बच्चे के साथ महिला की प्रतिमा के मिश्रण का कारण और प्रजनन

का सम्बन्ध उस प्राचीन व्यक्ति से है जो एक दो माह से भ्रूण विचारों को देख रहा है कि यह एक मेढक का बच्चा या गर्भ भी उसी द्वारा कारित हुआ था।

भारतीय कला में अल्वर्ट और विक्टोरिया के मेढक देवियों का घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध आज के मथुरा के मध्यवर्ती स्तूप रेलिंग पर पाया गया है, जो इस समय लखनऊ संग्रहालय में है।[56] प्रतिमा में एक तरफ मेढक का शरीर है, और उस पर मानव का सिर है जो स्पष्टतः नर दिखायी पड़ता है। विक्टोरिया और अल्वर्ट की स्त्री आकृति की तरह इस मेढक देवी के बाल खुरदरे हैं। इस प्रतिमा की तिथि कुषाण युग की हो सकती है अर्थात द्वितीय शताब्दी ईस्वी जो कि विक्टोरिया और अल्बर्ट की टेराकोटा की समकालीन हो सकती है।

भारतीय कला में मेढक ने पुनर्जन्म या उत्पादन के प्रतीक के रूप में स्थायी ख्यात अर्जित नहीं की वरन मेढक प्रजनन के प्रतीक के रूप में जाना गया। हम पाते हैं कि मातृ–देवी जो कि प्रतिमा भी मेढ़क जैसी झुकी मुद्रा में इसकी मेढक जैसी पृष्ठभूमि भी है और पाँव के पिछले घुटने भी मेढक जैसे हैं।[57] कुदावेल्ली (चित्र–52) की कमलवत सिर वाले देवियों की प्रतिमा के पाँव विशिष्टतया स्थिर हैं, और पेदी अनैसर्गिक रूप से घूम गयी है (चित्र–48, 52, 54, 69 और 70)। यह विस्तार सुझाव दे सकता है कि बच्चे के जन्म के दबाव में पाँव सिकुड़ गया है।

सारनाथ से प्राप्त एक दूसरे स्तूप में जो कि प्रथम शताब्दी का है इसमें महिला की प्रतिमा कुछ कलात्मक और शायद प्रतीकात्मक सादृश्यता रखती है सारनाथ की यह प्रतिमा विक्टोरिया और अल्वर्ट म्युजियम के कमलवत पंखुड़ियों के महिला टेराकोटा प्रतिमा से यह सादृश्यता रखती है।[58] सारनाथ से प्राप्त इस महिला प्रतिमा का निचला अंग (पैर) उसी पद्धति में सिकुड़ता है, जैसे विक्टोरिया और अल्बर्ट महिला आकृति के पैर सिकुड़े हैं और

उसके आँचल का छोर उसी तरह उड़ता है, जैसे मछली की पूँछ उसके उड़ते हुए साल की छोर उसी समरूप लगती है जैसे विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय के मातृ–देवी के उठे हुए हाथ। उसके नैसर्गिक हाथ आराम की मुद्रा में सिकुड़े हुए पाँव पर स्थिर रहते हैं। कुछ विद्वान इस प्रतिमा की श्रीवत्स से सम्बन्धित सारनाथ की प्रतिमा से देखते हैं।[59]

विक्टोरिया और अल्बर्ट मातृ–देवी की प्रतिमा की उत्पत्ति और पहचान सम्बन्धी व्याख्या अन्य विद्वान संकालिया और क्रांडिंग्टन के लेखों में भी चर्चा की गयी है। क्या मातृ–देवी की उत्पत्ति सम्बन्धी धारणा विदेशी है या भारतीय? क्या वह भारतीय विचार या हड़प्पा सभ्यता के प्राचीन अवशेषों से या देवी अदिति के ऋग्वेदों के उल्लेखों से? मुरे, क्रांडिंग्टन, और संकालिया ने इसका सम्बन्ध रोमन उत्पादकता की देवी बौबो से लगाया है जिसे मेढक की मुद्रा कहा जाता है।[60]

विक्टोरिया और अल्बर्ट टेराकोटा महिला की तरफ सन्दर्भ करते हुए क्राड्रिंग्टन ने निष्कर्ष निकाला है कि यदि इस छोटी प्रतिमा को बौबो स्वीकृत कर लिया जाय तो बहुत कम में से यह एक है।[61] संकालिया ने इस बौबो प्रतिमा का सम्बनध ग्रीस रोम से माना है।

ये विद्वान टेराकोटा की केवल महिला पृष्ठ को समझते हैं, और अन्य सम्भाव्य तर्क को नहीं निकालते हैं। क्रामरिच द्वारा चर्चा की गयी है कि भारत में प्रारम्भिक शताब्दी ईस्वी में रोमनों की उपस्थिति एक कमजोर साक्ष्य है।[62] उन्होंने आकृतियों को पूर्णतः भारतीय पद्धति का माना है। जब रोमन बौबो प्रतिमा की तुलना भारतीय मातृ–देवी से होती है तो यह सुस्पष्ट होता है कि जोर (दबाव) पूर्णतया भिन्न है (चित्र–130)। बौबो का प्रस्तुतीकरण विशिष्ट ढंग से हुआ है चाहे ठहरे हुए पाँव की मुद्रा में मान लें या सीढ़ीनुमा गैपिंग की मुद्रा में भोजन पकड़े हुए उसके हाथ के साथ या फैले हुए पाँव के साथ बैठी है। उसके

हाथ उसके जननांगों को फैलाते हुए और बाद में उन्हें बौबो मुद्रा के नाम से पुकारते हैं। लेकिन मातृ–देवी की प्रतिमा नहीं है, यह नश्वर है न कि देवी है। कई तस्वीरों में मातृ–देवी वस्त्र पहने हुए हैं और अन्यों में वह सिंहासनारूढ़ है।

महिला और मेढक के मिश्रण का विचार प्राचीन है। संकालिया ने स्वयं सिर विहीन महिला के शरीर की सूचना दी थी जिसकी तिथि 1200 ई0पू0 है जो कि अमेजन नदी के तट पर पायी गयी। बैल का सिर भी यहाँ पाया गया साथ–साथ दो पाँव उत्पादकता की तस्वीर में पायी गयी लेकिन पाँव एम मुद्रा में नहीं हैं। संकालिया ने इस प्रतिमा का प्रयोग मातृ–देवी के रोमन स्रोत के बारे में उन्होंने अपना मत बाद में बदला था।[63] कुछ मेढक की प्रतिमायें बहुमूल्य पत्थरों और धातुओं के रूप में बनी हुई पायी गयी हैं जिसे मातृ–देवी के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। इस प्रकार ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि भारतीय कला में मातृ–देवी की प्रतिमा विदेशी कला का प्रभाव ही है, चाहे जो कुछ भी हो उनके प्रारम्भिक प्रारूप का सन्दर्भ भारतीय भाग्य देवी के प्रतीक का आधार है। एक विशिष्ट प्रभाव है जैसा कि प्रारूप–4 मानव सिरयुक्त सम्भव हो सकी है।

नोट्स

1. धेरे, 1978; इलूस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज, 1971; देसाई, 1984
2. बोस, 1960, सजेस्ट दैट दिस आइडिया लाइज बीहाइंड द फारमेसन आफ द मकर थ्रू द आर्टिस्ट इमैजिनेटिव इलैबोरेसन आफ ए लोटस नोड, 27।
3. कुमारस्वामी, 1971, वालूम 2, 56 यफ0यफ0, लिबर्ट, 1976, 202–4, एण्ड रोसू, 1966।
4. यजुर्वेद 23/48।
5. गोपथ ब्राह्मण, 1/1/16।
6. श0ब्रा0 6/4/17।

7. क्रामरिच, 1956, फीगर 4, साइट्स ऐन इक्सजाम्पल फ्राम साँची ऑफ ए फिमेल फिगर फार्मड बाइ सूटलि कम्बाइंड लोट्स पार्टस इन रिलेशन टू हर आइडिन्टीफिकेशन आफ द गाडेज विथ द लोट्स हेड ऐज अदिति।

8. शिव राममूर्ति, 1982, 23; क्रामरिच, 1928, 106, प्रोवाइड्स ए डिफरेन्ट ट्रान्सलेशन आफ दिस पैसेज।

9. इलुस्ट्रेटेड इन मार्ग, 1979, इन प्रेज आफ अइहोल बादामी, महाकुटा, पत्तादकल, फीगर 25, 45।

10. लिवर्ट, 1976, 202–4।

11. वि0 एस0 अग्रवाला, 1951, 26।

12. कुमारस्वामी, 1971 पृ0 61।

13. अथर्ववेद 3/12/18।

14. ऋग्वेद 1/19/14।

15. वि0एस0 अग्रवाला, 1951, 27।

16. कुमारस्वामी, 1971, आर0एन0 मिश्रा, 1981, ऐण्ड गैल हिनिच सुथरलैन, ''द देमन ऐण्ड हिज डिस गेसः द यक्ष इन हिन्दू ऐण्ड बुद्धिस्ट आर्ट ऐण्ड लिट्रेचर'' पी–एच0डी0 डिस0, इनवर्सिटी आफ सिकागो, 1987।

17. वानप्रस्थ 152/18।

18. अथर्ववेद 10/2/29–33।

19. कः स्विदेकाकी चरित क उ स्विज्जायते पुनः।

किं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्।। (यजुर्वेद 23/9, 45) सूर्य एकाकी चरित चन्द्रमा जायते पुनः।

अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्।। (यजुर्वेद 23/10, 46)

20. ऋग्वेद 7/61/5।

21. ऋग्वेद 5/70/4।

22. यक्षस्ययाध्यक्षं तविशं वृहन्तम्, ऋग्वेद 10/88/13।

23. ऋग्वेद 4/3/13।

24. ऋग्वेद 7/56/16।

25. यक्षामिव चक्षुषः प्रियो वा भूयासम, गोभिल गृह सूत्र 3/4/28।

26. ब्राह्मण गृहसूत्र 3/1/25। णायाधम्मकहा 1/25ः रायपसेणिय सुत कण्डिका 1/48।

27. महद यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै वर्लि राष्ट्रमृतो भरन्ति, अथर्ववेद 10/8/15।

28. दीघनिकाय 3/195 बुद्ध के व्याख्यान भाग 3।

29. अथर्ववेद 10/2/32।

30. रामायण यक्षत्वममरत्वं च; 3/11/94।

31. देखें भागवत कथा यशपाल जैन पृष्ठ 349–50।

32. देखें नालन्दा विशाल शब्द सागर पृष्ठ 1365।

33. देखें अद्भुत भारत ए0एल0 वाशमः अध्याय 7; धर्मपूजा सिद्धान्त एवं अध्यात्म ज्ञान, पृष्ठ 251–52।

34. देखें डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल भारतीय कला अध्याय 14, संस्कृत युग की कला में प्रतीक और मूर्तियाँ पेज–339।

35. देखें ए0एल0 श्रीवास्तवा भारतीय कला अध्याय 5, कुषाण–कला का उत्कर्ष, पेज–73।

36. ए0एल0 श्रीवास्तवा, 1979, 51, वीलीव्स द श्रीवत्स टू डेराइव्ड फ्राम ए ह्यूमन फीगर।

37. द ग्रीफीन आकर्स आफेन इन ऐन अरली बुद्धिस्ट कान्टेक्स्ट ऐण्ड इट मे बी इंपोरटेड इमेज, बट इट्स सीग्नीफीकेंस इन ऐन इण्डियन बुद्धिस्ट कान्टेक्स्ट हैज नाट बीन इंटरप्रीटेड। क्रामरिच, 1956, साइट्स दिस इक्सजैम्पल ऐज ए ''काग्नेट कंसेप्सन'' टू मातृ–देवी। सी नोट्स द मातृ–देवी इज नाट लक्ष्मी।

38. यस0पी0 गुप्ता, 1980, 325।

39. पी0के0 अग्रवाल, 1974।

40. आइविड।

41. फार ए गंगेटिक कापर एंथ्रोपोमोर्फ, सी सी मार्टीन लर्नर, ''द सोर्ड एण्ड द लोटस, '' मेट्रोपोलिटन म्यूजियम आफ आर्ट, न्यू यार्क, 1984, पी0एल0 1। ए यक्ष इमेज हैज बीन रीपोर्टेड ह्वीच होल्ड्स श्रीवत्स इन हिज हैण्ड, लाइक सच ऐन आब्जेक्ट : सी0 लिन–बोडिन, ''एन अरली यक्ष फ्राम आकथा नीयर सारनाथ. .....'' इन छवि 2, इडी0 आनन्द कृष्णा, बनारस, 1981, 294–97। इन एनअदर कारविंग ए श्रीवत्स इज ऐन अर्नामेंट आन द रीगिंग आफ ए हार्स।

42. इक्सजैम्पल हैव बीन पब्लिस्ड बाइ पी0 चन्द्रा, 1971, 139–48।

43. द ह्यूमन–हेडेड श्रीवत्स इज इनक्लूडेड इन ए लार्ज स्टोन रीलीफ; 16.5 बाइ 10 इंचेज; इन द गवर्नमेन्ट म्यूजियम, मद्रास, नं0 17 फ्राम पेड्डामुडियम; कुड्डापाह डिस्ट्रिक्ट, आन्ध्रा आफ सी0 फोर्थ सेन्चुरी; फीगर 122; पब्लिस्ड बाइ शिवराममूर्ति, 1957, वालूम 7, पी0यल0 1 ए, 12 डेटेड विश्नुकुन्डीन आर अरली पल्लवा, आल्सो 1950, पी0एल0 एक्स0वी0 ए, 21–63, एण्ड 1982, फीगर 47; शर्मा, 1972, फीगर 6, एण्ड 1982, फीगर्स 86 ए–एफ, 155, हवेयर इक्सजैम्पल आफ द सेम आइकोनोग्राफी आर काल्ड ''त्रिमुर्ति प्लाक''; ए0एल0 श्रीवास्तवा, 1979, फीगर 3; एण्ड बनर्जी 1956, 1974, पी0एल0 XLVII I, 545।

44. पब्लिस्ड ड्राइंग इनक्लूड फेसियल फीचर्स, बट देयर ऐक्चूअली आर ननः शिवराममूर्ति, 1954, पी0एल0 एल0ए0, 12; 1941, पी0यल0 1, फीगर 4, 24; शिवराममूर्ति, साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज, 1963, फीगर 31, 42; शर्मा, 1972, ए0यल0 श्रीवास्तवा, 1979, लाइन ड्राइंग 3; बनर्जी, 1974, पी0यल0 XIX, 376; फाटो पब्लिस्ड बाइ शिवराममूर्ति 1982, पी0यल0 आइडेन्टाफाइड बाइ पल्लवा, नाइन्थ सेन्चुरी।

45. किरन कुमार थपलियाल, स्टडीज इन ऐनसिएन्ट इण्डियन सील्स, लखनऊ, 1972, 188 एन0 4।

46. वान स्क्रोडर, 1981, 62, 1 बी।

47. पी0के0 अग्रवाल, अरली इण्डियन ब्रोन्जेज, 1977 फीगर 44, एण्ड 1985, फीगर 2 एण्ड 3।

48. काड्रिंग्टन, 1935, 65; आलसो पब्लिस्ड बाइ तिवारी, 1971 ऐण्ड 1985, फीगर्स 2 ऐण्ड 3।

49. प्रतपदित्य पाल डिस्कस्य मेनी इन ''ऐन एडोर्स्ड सैव फ्राम कश्मीर ऐण्ड इट्स कल्चरल सिग्नीफिकेन्स,'' आर्ट इण्टरनेशनल 24, 5–6; 46–52।

50. अग्रवाला, 1974 ऐज द फ्रन्टीस पीस।

51. जिम्बटास, 1982, 175, फीगर 171। काला, 1980, 64, रेफस्ट टू दिज इमेजेज।

52. जिम्बटास, 1982, 178।

53. द रोल आफ गार्डेस आफ चाइल्ड वर्थ इज डिस्ट्रिक्ट फ्राम दैट आफ फरिटिलिटी गार्डेस।

54. जान डी0 कूने ऐण्ड विलियम केली सिम्पसन, ''ऐन अर्ली डाइनेस्टिक इस्टैटवेट आफ द गार्डेस हेकात,'' क्लेव लण्ड म्यूजियम बुलेटिंग; सिप्टेम्बर 1976; 202–9।

55. गुल्डर, 1960–62।

56. आर0एन0 मिश्रा, 1981, पी0एल0 76, 132।

57. तिवारी, 1971, चैप0 4, ऐण्ड सिसोदिया, 1969, 411।

58. श्रीवास्तवा, 1979, फीगर 2, नं0 3।

59. शिवराममूर्ति, 1982, 28।

60. मूरे, 1934, 93–100; कोड्रिंग्टन, 1935, 65–66; सांकालिया, 1960, 3–23; तिवारी, 1971, चैप0 4।

61. काड्रिग्टन, 1935, 66।

62. एच0 हेरास, ''ए प्रोटो–इण्डियन रिप्रेजेन्टेशन आफ द फरिटिलिटी गाड,'' डी0आर0 भण्डारकर वालूम, इडी0 बी0सी0 ला; कलकत्ता, 1940; 121–30, आर्गुज दैट दिस इज नाट ए प्लान्ट ऐट आल, बट इज ए स्काराब; क्रामरिच, 1956।

63. इलुस्टेडेड लन्दन न्यूज, अगस्ट 1971, 42, शर्मा 1982, फीगर 3, 15, 1978, 4 इलुस्ट्रेटेड।